R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-9 सितम्बर 2021

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

सितम्बर का E - अंक

नन्दीश्वरद्वीप की महिमा

मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। प्रत्येक द्वीप समुद्र से वेष्टित है। इन द्वीप-समुद्रों का विस्तार उत्तरोत्तर दूना-दूना है। जम्बूद्वीप को केन्द्र मानकर आठवाँ नन्दीश्वरद्वीप है। इस द्वीप की प्रत्येक दिशा में एक काले रङ्ग का अञ्जन, चार सफेद रङ्ग के दधिमुख एवं आठ लाल रङ्ग के रतिकर - इस प्रकार तेरह पर्वत हैं। चारों दिशाओं में कुल बावन पर्वत हैं तथा प्रत्येक पर्वत पर एक-एक अकृत्रिम जिन मन्दिर है। प्रत्येक जिन मन्दिर में पाँच सौ धनुष ऊँची रत्नमयी मनोहर शाश्वत एक सौ आठ जिन प्रतिमाएँ पद्मासन मुद्रा में विराजमान हैं। यहाँ अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर देवगण अत्यन्त भक्तिपूर्वक अष्टद्रव्य से पूजन करते हैं तथा मनुष्य भी वर्ष में तीन बार इन जिन चैत्यालयों की वन्दना करने की भावना भाते हुए विशेष पूजन और विधान करते हैं।

आठमों द्वीप नन्दाश्वरं भास्वरं, भौन बावन प्रतिमा नमौं सुखकरं।

श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई के
तत्त्वावधान में समयसार : कहान शताब्दी महोत्सव तथा
श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं
कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन
के संयुक्त तत्त्वावधान में

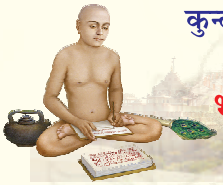

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

(रविवार, 31 अक्टूबर से गुरुवार, 04 नवम्बर 2021)

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर !

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में, भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर **रविवार, 31 अक्टूबर से गुरुवार, 04 नवम्बर 2021** तक शिविर का आयोजन किया जा रहा है—आप इन तिथियों को सुरक्षित कर लें।

इस अवसर पर —

— पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी का लाभ

— देश के विशिष्ट विद्वानों के स्वाध्याय का लाभ

— श्री समयसारजी विधान का लाभ

— दीपावली पर्व पर निर्वाणलाडू का दृश्य एवं निर्वाण लाडू चढ़ाने का लाभ

— तीर्थधाम मङ्गलायतन के दर्शन का लाभ

— सांस्कृतिक कार्यक्रमों का लाभ प्राप्त होगा

— विद्वत् समागम — दादाश्री विमलचंद झांझरी, उज्जैन; पण्डित राजेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर; पण्डित प्रदीप झांझरी, सूरत; पण्डित जे. पी. दोशी, मुम्बई; पण्डित अरहन्त झांझरी, उज्जैन; पण्डित नगेश जैन, पिड़ावा; बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन; ब्रह्मचारिणी ज्ञानलताबेन झांझरी, पुष्पलताबेन झांझरी, समताबेन झांझरी, उज्जैन; पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि का लाभ प्राप्त होगा।

सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

पत्र व्यवहार का पता— तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री); 7581060200(डॉ. सचिन्द्रजैन)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-9 (वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077) सितम्बर 2021

प्रभु इन्तजार उनका,.....

प्रभु इन्तजार उनका, जिन मुक्तिमार्ग अपनाया।
वन्दन अगणित मुनिवर, सिद्धों का संग पाया॥

जंगल तो बहाना है, मुनि तो निज में विचरें।
लेखन तो जरिया है, जिससे जिन वच उचरें॥
ऐसे उपकारी जन, चिंते हि चित्त हर्षाया।
वन्दन अगणित मुनिवर, सिद्धों का संग पाया॥1॥

जिन की इक सूरत हो, लघुनन्दन सिद्धों के।
धीरज की मूरत हो, युवराज हो सिद्धों के॥
उपसर्ग किए जिनने, उनने भी शीश नवाया।
वन्दन अगणित मुनिवर, सिद्धों का संग पाया॥2॥

निष्कम्प निडर निश्छल, जब ध्यान मग्न निश्चल।
पशु देख टक-टकी से, सब बैर होत निर्मल॥
मैत्री प्रमोद करुणा, उद्यान सुगुण विकसाया।
वन्दन अगणित मुनिवर, सिद्धों का संग पाया॥3॥

जीवन ही अलौकिक है, समता रसपान किया।
वात्सल्य असीम भरा, शम से जग जीत लिया॥
'समकित' को पाकर के, मुक्ति का बीज लगाया।
वन्दन अगणित मुनिवर, सिद्धों का संग पाया॥4॥

— मङ्गलार्थी समकित जैन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
वरजू बहिन
सुपुत्र **श्री जवरचंदजी**
दुलीचंदजी हथाया
(थाणावाले) मुम्बई-7

क्या - कहाँ

दशलक्षण	5
पहले महाव्रत लेना,.....	9
श्री समयसार नाटक	17
श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप	27
आचार्यदेव परिचय शृंखला	29
जिस प्रकार-उसी प्रकार	31
समाचार-दर्शन	32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

आराधना का महान पर्व
दशलक्षण

समस्त शक्ति से धर्म की उपासना का प्रतीकरूप महापर्व अर्थात् पर्यूषण। धर्माराधन की जागृति देनेवाला यह पवित्र पर्व अनादि अकृत्रिम है। दीपावली पर्व, अक्षय तृतीया आदि पर्व तो किन्हीं महापुरुषों के जीवन-प्रसंगों से संबंधित हैं, परंतु नंदीश्वर-अष्टाह्निका का तथा दस लक्षण-पर्यूषण जैसे पर्व अनादि अकृत्रिम हैं। उनमें अष्टाह्निका पर्व जिनभक्ति प्रधान है और पर्यूषण पर्व आराधना प्रधान है। इन दिनों जैनमात्र में अनोखी जागृति आ जाती है। वही जागृत पर्व आजकल चल रहा है। ऐसे अवसर उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य—इन वीतरागी धर्मों का स्वरूप जानकर, उनकी उत्तम आराधना की भावना हमारा कर्तव्य है।

श्री पद्मनंदिस्वामी कहते हैं कि—तीन लोक के स्वामी इन्द्रों से भी जो वंदनीय हैं—ऐसे इन उत्तम दस धर्मों का स्वरूप सुनकर उन्हें धारण करने का किसे उत्साह नहीं होगा? कौन उन्हें हर्ष सहित धारण नहीं करेगा? सर्व मोक्षार्थी जीव इन उत्तम धर्मों का स्वरूप सुनकर आनंदित होंगे और हर्ष सहित उनका पालन करेंगे। इन दस धर्मों की उत्तम आराधना मुनिदशा में होती है। मुनिदशा मोक्ष महल की सीढ़ी है; जिसके एक ओर वैराग्य तथा दूसरी ओर त्याग—इस प्रकार दोनों ओर दो सुंदर कटहरे लगे हैं, और दस धर्मरूपी दस विशाल सीढ़ियाँ हैं। मोक्ष महल में पहुँचने की भावनावाले पुरुषों को ऐसी सीढ़ी चढ़ने योग्य है... अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक जो जीव ऐसे उत्तम क्षमादि भावरूप धर्मों की वैराग्यपूर्वक आराधना करता है, वह जीव मुक्ति प्राप्त करता है। अहो, मोक्षार्थी जीव को ऐसे दस धर्मों की आराधना के प्रति उत्साह जागृत होता है। धन्य हैं वे उत्तम क्षमावान मुनिवर कि जिन्हें घोर उपसर्ग करनेवालों के प्रति भी क्रोध की वृत्ति नहीं उठती और जो रत्नत्रय की आराधना से च्युत नहीं होते। ऐसे वीतरागी धर्मों की महिमा

सुनकर जगत के जीव हर्षित होंगे; सर्व जीवों को चैतन्य स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित उत्तम मुनिधर्म की आकांक्षा होगी।

आत्मा का स्वभाव चेतना है; और उस चेतना का निर्विकाररूप से परिणमित होना, सो धर्म है। जितने अंश में चेतना निर्विकाररूप (रागरहित) परिणमित हो, उतना धर्म है, और उतना ही मोक्षमार्ग है। रागरहित चेतना परिणाम में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा उत्तम क्षमादिक समस्त धर्मों का समावेश हो जाता है। आत्मा क्रोधादि कषायभावोंरूप परिणमित न हो और अपने स्वभाव में स्थिर रहकर वीतरागभावरूप परिणमित हो—वह उत्तम क्षमादि धर्म है। पहले अनंतानुबंधी क्रोध का अभाव करने से पूर्व उत्तमक्षमादि धर्मों की आराधना अंशमात्र नहीं हो सकती। इसप्रकार उत्तमक्षमादि धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन है ('दंसणमूलो धम्मो'—यह कुन्दकुन्द स्वामी का सूत्र है।)

प्रश्न—उत्तमक्षमादि दस धर्म तो मुनियों के धर्म हैं; उनसे हमें श्रावकों को क्या?

उत्तर—उत्तमक्षमादि दस धर्मों की उत्कृष्ट आराधना मुनिवरों को होती है—यह ठीक है, परंतु श्रावक धर्मात्मा को भी उन धर्मों की आराधना अंशत: होती है। शास्त्र में कहते हैं कि जितने मुनियों के धर्म हैं, वे सब धर्म आंशिकरूप से श्रावकों के भी होते हैं। सम्यग्दर्शनपूर्वक अनंतानुबंधी क्रोधादि का जितना अभाव हुआ और जितना वीतरागभाव प्रगट हुआ, उतना धर्म है तथा वह मोक्ष का कारण है। इसलिये श्रावक को भी उत्तमक्षमादि धर्मों का स्वरूप जानकर उसकी आराधना की भावना करनी चाहिये।

उत्तमक्षमादि दस धर्मों का स्वरूप संक्षेप में इसप्रकार है—

(1) किसी भी जीव द्वारा वध, बंधन, निंदा आदि उपद्रव होने पर भी अपनी चैतन्य भावना में लीनता से ऐसा वीतरागभाव रहना कि क्रोध परिणामों की उत्पत्ति ही न हो, उसका नाम उत्तमक्षमा है। मोक्षमार्ग के पथिक संतों के लिये यह उत्तमक्षमा सच्ची सहायक है अर्थात् वह साधक की सहचरी है। क्रोध की उत्पत्ति अपने साधकभाव में बाधक है—ऐसा समझकर उसे दूर से ही छोड़ना चाहिये।

(2) शरीरादि से भिन्न अपना आत्मा ही जगत में सर्वोत्तम पदार्थ है—ऐसा जानकर देहाश्रित किसी वस्तु का—रूप, बल, जाति आदि का अथवा ज्ञानादि का भी मद न होना—ऐसे वीतरागभाव को उत्तम मार्दव धर्म कहते हैं।

[—यह ध्यान में रखना चाहिये कि एक वीतरागभाव में दसों धर्मों का समावेश हो जाता है; और वीतरागभाव के बिना एक भी धर्म नहीं होता।]

(3) परमार्थत: आत्मा के ज्ञानभाव में विकार का होना ही वक्रता है; आत्मा के ज्ञान की ऐसी आराधना प्रगट हो कि शरीर जाने का प्रसंग आये, तथापि हृदय में मायाचार या कपटभाव न हो और अपने रत्नत्रय में लगे हुए दोष गुरु के निकट सरलता से प्रगट करके उन दोषों को दूर करे—उसका नाम उत्तम आर्जवधर्म है।

(4) भेदज्ञान की भावना के बल से शरीरादि परद्रव्यों के प्रति स्पृहारूप मलिनता जिसके नहीं है और रत्नत्रय की पवित्र आराधना में जो सदा तत्पर है, उसे उत्तम शौचधर्म है।

(5) सत्रूप ऐसा जो ज्ञानस्वभाव, उसे साधने में जो तत्पर है और कभी वचन बोले तो वह वस्तुस्वभाव के अनुसार तथा जिनवाणी के अनुसार स्व-पर हितकारी सत्य वचन ही बोलता है—असत्य वचन बोलने की वृत्ति ही नहीं होती; सत्य वस्तुस्वभाव को जो जानता है, उसी को ऐसे सत्यधर्म की आराधना होती है।

(6) संसार में मनुष्यत्व दुर्लभ हे, परंतु संयमरूप मुनिदशा तो उत्तरोत्तर अतीव दुर्लभ है। सम्यग्दृष्टि को भी संयमधर्म की भावना बनी रहती है। चैतन्य में लीनता से ऐसा अकषायभाव प्रगट हो कि इन्द्रियविषयों के प्रति झुकाव ही न हो, तथा किसी भी प्राणी को दु:ख देने की वृत्ति ही न हो, समिति-गुप्ति का पालन हो, वहाँ संयम धर्म होता है।

(7) विषय-कषायरूपी चोरों से अपने रत्नत्रयरूपी धन का बचाने के लिये तपरूपी योद्धा रक्षक समान है। चाहे जैसा उपद्रव आये, तथापि अपने चैतन्य के चिंतन से च्युत न होना और विषय-कषायों में उपयोग न जाना, वह उत्तमतप है। अहा, मुनियों के रत्नत्रय की रक्षा करनेवाला यह तप

परमानंद को देनेवाला है।

(8) आत्मा का जो ज्ञानभाव है, वह परभाव के त्यागस्वरूप ही है; 'मैं शुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ, शरीरादि कुछ भी मेरा नहीं है'—इस प्रकार सर्वत्र ममत्व के त्यागरूप परिणाम से चैतन्य में लीन होकर मुनिराज उत्तम त्यागधर्म की आराधना करते हैं। सम्यक्श्रुत का व्याख्यान करना तथा बहुमानपूर्वक साधर्मियों को पुस्तक, स्थान आदि देना, वह भी त्यागधर्म का प्रकार है।

(9) 'एक शुद्धचैतन्य ही मेरा है, उससे भिन्न कुछ भी मेरा नहीं है'—ऐसा जानकर चैतन्य भावना के बल से देहादि समस्त परद्रव्यों के प्रति ममत्व परिणाम का परित्याग-वही उत्तम अकिंचन्यधर्म है।

(10) मेरा सुख मेरे अतीन्द्रिय आत्मा में ही है, स्त्री-शरीरादि किन्हीं भी बाह्य विषयों में मेरा सुख नहीं है—ऐसी विशुद्धमति के बल से ऐसे निर्विकार परिणाम हो जायें कि स्त्री आदि को देखकर या देवी द्वारा ललचाये जाने पर भी विकार की वृत्ति ही न हो; स्त्री को देखकर माता, बहिन या पुत्रीवत् निर्विकारभावना रहे—उसी को सच्चे ब्रह्मचर्य धर्म की आराधना होती है।

—इस प्रकार उत्तमक्षमादि दस धर्मों की उत्कृष्ट आराधना बतलायी। यहाँ ऐसा नहीं समझना कि—इन धर्मों की आराधना मात्र पर्यूषण पर्व के दिनों में होती है, परंतु सदैव इन धर्मों की आराधना हो सकती है। इन धर्मों की आराधनारूप वीतरागभाव जिन्होंने प्रगट किया, उनके आत्मा में सदा पर्यूषण ही है; वे प्रतिक्षण धर्म की उपासना कर ही रहे है।

—ऐसे धर्म के उपासक संत-मुनिवरों के चरण में भक्ति सहित शत-शत प्रणाम!

उत्तम क्षमादि वीतरागी धर्मों का स्वरूप दर्शानेवाला जिनशासन जयवंत हो!

वीतराग धर्म की परि-उपासना प्रेरक दसलक्षणी पर्यूषण पर्व जगत को मंगलरूप हो!

.....गतांक से

पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, गाथा 29 पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

पहले महाव्रत लेना, वह कर्तव्य नहीं

अपने निर्मल आनन्दस्वभाव का प्रेम और निर्मल आनन्दस्वभाव को प्राप्त ऐसे साधर्मियों के प्रति प्रेम, परन्तु उनसे विरुद्ध माननेवालों कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को स्थापित करनेवालों, विपरीत प्ररूपणा करनेवालों, उनके स्थापित किये हो कोई अनेक देव, उनके प्रति धर्मी को बैर नहीं होता। जगत में तो ऐसे अनादि से चला आ रहा है। समझ में आया? जगत में ऐसी विपरीत मान्यता, उनके देव-गुरु उन्होंने अपनी पूजा के लिए स्थापित किये हों, इससे किसी को अनादर करना—ऐसा जैनदर्शन में नहीं हो सकता। समझ में आया? माँगीरामजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : संकल्प यह कि मार डालूँ यह। जीव को मार डालूँ—ऐसी संकल्प हिंसा नहीं होती। विरोधी कोई विरोध करने आया, राज्य में राजा हो और विरुद्ध करने आया हो तो जाये। ऐसी हिंसा है परन्तु है हिंसा। उसे हिंसा जाने, उसे हिंसा जाने, पाप जाने। यह सब हिंसा का त्याग करना, इसका नाम अहिंसा है। संकल्प की हिंसा, विरोधी हिंसा, आरम्भ की हिंसा, उद्योग की सब हिंसा राग है। वह तो ठीक परन्तु ये दया के भाव राग, वह हिंसा है।

परजीव की दया का भाव वह भी वास्तव में तो हिंसा है। राग है न? उस रागरहित आत्मा की अहिंसा है, उसे अहिंसा कहते हैं। बाहर का त्याग है, वह तो अभी विकल्प है। अन्दर जाने के लिये मनुष्य को बाहर का खटक-खटक रहा करता है, वह मानो कि इस बाहर से त्याग होवे न ऐसा तो अहिंसा (कहलाये)। बाहर से त्याग ही है, अन्दर कहाँ प्रवेश हो गया है? वह तो एक व्यवहार से बात करते हैं कि श्रावक हो उसे संकल्प हिंसा

नहीं होती। सम्यग्दृष्टि हो उसकी बात है। आत्मा के आनन्द का अनुभव है, उसे राग इतना छूटा है और बाकी राग रहा है, उसकी व्याख्या कि दूसरे प्राणी को मार डालूँ, ऐसे कुचल डालूँ—ऐसा भाव उसे नहीं होता परन्तु राज्य में कोई विरोधी विरोध (करने) आया हो तो उसके लिये उसे विरोध करने का भाव आता है परन्तु वह अच्छा है—ऐसा नहीं है। वह आता है, तथापि उसका श्रावकपना चला नहीं जाता, इतनी बात बताते हैं, वरना है तो वह पाप। विरोध करना, विकल्प वह भी पाप; आरम्भ में आरम्भी हिंसा में जो रागभाव होता है, वह भी पाप; उद्योगी में होता है, वह भी पाप परन्तु सम्यग्दृष्टि को इतना राग नहीं छूटा; इसलिए इतना राग वहाँ होता है। आरम्भी का, उद्योगी का, विरोधी का (राग है), तथापि है तो वह भी हिंसा। समझ में आया? दृष्टि में तो उससे रहित आत्मस्वभाव, वह अहिंसाधर्म है। गजब बात! वीतराग मार्ग को... समझ में आया?

सभी साधर्मियों में उत्कृष्ट वात्सल्य निरन्तर रखना चाहिए। सम्यग्दृष्टि जीव, श्रावक, सच्चे मुनि धर्मात्मा हों, उनके प्रति धर्मी को तो वात्सल्य ही होता है, प्रेम होता है।

भावार्थ : गोवत्स जैसी प्रीति का नाम वात्सल्य है। वात्सल्य की व्याख्या की है। वात्सल्य किसे कहते हैं? गाय को बछड़े के प्रति हो, वैसी प्रीति को वात्सल्य कहते हैं। **जैसे बछड़े की प्रीति से गाय, सिंहनी के सन्मुख चली जाती है...** अपने बछड़े के प्रेम के कारण, मेरे प्राण जायेंगे—यह भी वह दरकार नहीं करती। **और विचार करती है कि यदि मेरा भक्षण हो जाय और बछड़े की रक्षा की जाय....** अर्थात् बच जाये। उसे ऐसा प्रेम बछड़े के प्रति होता है। **अत्युत्तम है। ऐसी प्रीति धर्म...** ऐसी प्रीति आत्मा के अहिंसा स्वभाव में (धर्मी को होती है) समझ में आया? आहा...हा...!

देखो न! टोडरमलजी को हाथी के नीचे कुचल दिया। पता है कि इन ब्राह्मणों ने यह शिव की मूर्ति रखी है। राजा को मैं कहूँ तो राजा मानेगा... अरे! यह कैसे रखे? उनके प्राण जायें, मेरे प्राण जाये तो जाये। आहा...हा...! उस समय यह विचार आया था। उस समय की उनकी

मौजूदगी में प्राण छूटने का परीषह का योग आया। उनके इस स्मरण हॉल में कर्फ्यू आया, ये सब नियम हैं, कुदरत के नियम हैं। समझ में आया ?

महा कठिनता से दो सौ वर्ष में एक व्यक्ति निकला ऐसा, तब आठ दिन कर्फ्यू, लोगों को छूट से आना (बने नहीं) भय को प्राप्त हो गये। इतना योग ही उन्हें नहीं था उस समय और यहाँ बाहर में प्रसिद्धि का ऐसा योग नहीं। उस समय ख्याल आ गया था। ठीक! फिर तीन दिन बाद पीछे से तीन दिन अनुकूल रहा। दो सौ वर्ष में यह योग (आया)। जब यहाँ आनेवाले ग्यारह दिन आज, उसमें ही कर्फ्यू, देखो तो सही! क्या कुदरत के नियमानुसार क्रमसर होता है, ऐसा उल्टा-सीधा कुछ नहीं होता। इतना प्रभावना में स्वयं की स्थिति लम्बी नहीं थी, इसलिए देह छूट गया और यहाँ भी इतना अधिक प्रभावना एकदम बढ़ जाये (ऐसा नहीं होता) वह निकला अवश्य प्रभावना का करनेवाला। सोलह लाख खर्च करे वह कोई कम बात है ? कुदरत में... सुखाडिया के प्रति लोक में इतना विरोध। सुखाड़िया न ? इस कांग्रेस के प्रति इतना गाँव के लोगों का विरोध। वे कहें गाँव में एक व्यक्ति को रहने नहीं दूँगा। कुदरत देखो न बनकर आया, कहा कि आठ दिन में आया यह। बने उस समय उसके नियमानुसार (बने)।

कुन्दकुन्दाचार्य की शैली देखो तो उनका शास्त्र भी पूरा हो गया, उनका पुण्य जबरदस्त। समझ में आया ? पवित्रता जोरदार, पुण्य जोरदार, भगवान का योग, शास्त्र लिया वह पूरा किया और निर्विघ्न समाप्त (हुआ)। उनकी दशा ऐसी थी और पुण्य (ऐसा था)। उस समय में ये सब विचार आये थे, वह तो ऐसा ही है। दो सौ वर्ष में यह पहला योग है। यह आकर खड़ा रहा। यह आठ दिन में आकर खड़ा रहा। आगे-पीछे पन्द्रह दिन पहले या पन्द्रह दिन बाद नहीं। ऐसे नियमसर काम जगत के व्यवस्थित चलते हैं। उनका प्रसंग जब यह बना तब उनके प्रसंग के समय ऐसा हुआ, वहाँ बाहर के प्रसंग, फिर ऐसे प्रसंग एकदम ? बड़ा, ओहो...हो... ! पाँच लाख का हॉल। वह पाँच लाख का गिना जाता है। वह तो कौन जाने कितने खर्च किये होंगे। देखो! छह लाख खर्च, पाँच लाख चुपचाप दिये। बाहर से इक्यावन हजार

ध्रुवफण्ड में एकान्त में बोले न, सेठिया। पाँच लाख निकाले हैं। सेठिया ने बात की है, ऐसे बोलते थे। वरना अपने को कहाँ पता ? ग्यारह लाख पहले खर्च हुए, ऐसा एकान्त में बोलते थे, एकान्त में (कहते थे)। सब होकर ग्यारह लाख (हुए) प्रसंग ऐसा हुआ तो ऐसा हुआ, तथापि वापस जब सारांश कुछ आया अन्तिम परसों के दिन वह आया अनुकूल। दस-दस हजार लोग और यह सब... कोई कभी सौ वर्ष में नहीं हुआ हो, अठारह हाथी और सजाकर बड़ा जुलूस (निकला) यह तो यह सब ऐसी की ऐसी लाईन है, यह सब। तीन दिन पहले कुछ और तीन दिन में कुछ। यह बाहर की स्थिति कौन करे ? भाई! उनके परमाणु की पर्याय और उनके नियम में चलता हो, वह चलेगा। कोई उसका कर्ता-हर्ता नहीं है। दूसरा कहे कि हम ऐसा ठीक कर देंगे, बापू! वह कहीं तेरा किया हो—ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, प्रेम प्रेम। ओहो...हो... ! धर्मात्मा के प्रति, बछड़े को... मृत्यु करके अपने बछड़े का भला करना चाहे; इसी प्रकार धर्मी ऐसी प्रीति धर्म में और धर्मात्मा साधर्मी में चाहिए। अपने जैसे... नीचे आयेगा। रत्नकरण्ड श्रावकाचार का श्लोक। इसमें अंक नहीं दिया है परन्तु वह सत्रहवाँ चाहिए। वह हाथी पैर नहीं रखता था, ऐसी कथा आती है। राजा ने हाथी को हुक्म किया, हाथी पैर नहीं रखता। उसे अरे... ! स्वयं कहते हैं कि हे गजराज! जब राजा ने हुक्म किया, राजा के ख्याल में बात नहीं तो अब तुझे किसलिए डर लगता है ? आहा...हा... ! २८ वर्ष का युवक मनुष्य ऐसे पण्डित! आचार्यकल्प! वह तो योग ऐसा हो तो बने। कौन जाने... वरना जयपुर में तो बड़े साधर्मी जीव बहुत (हुए हैं)। कैसे-कैसे बड़े हो गये हैं ?

दीवान, माँस के खानेवाले ने कहा लो! अमरचन्द दीवान। जाओ सिंह को खिला। अमरचन्द दीवान लड्डू लेकर सिंह के पिंजरे में गये। सिंह! यह खा, नहीं खाये तो मैं हूँ, यहाँ मुझे खा। कहो! दीवान (कहते हैं) खा सिंह! ऐसे अन्दर पिंजरे में गये। देखो! लड्डू खा, खाना हो तो और या मुझे खा। माँस, माँस नहीं दूँगा। सिंह स्थिर हो गया, माँस नहीं दूँगा, माँस नहीं दूँगा, मेरा भोजन लड्डू है खाना हो तो खा, वरना मुझे खा। सिंह नरम हो गया, उस

गाँव में टोडरमलजी की मृत्यु, एक दृष्टान्त, लो! कैसा प्रसंग बनता है! आहा...हा...! कहाँ गये देव और कहाँ गये.... ? ऋषभदेव भगवान को छह महीने आहार नहीं मिला। कहाँ गये देव ? लो! पुत्र को पता नहीं ? छह-छह महीने तक आहार नहीं मिला। ये ऋषभदेव भगवान भरत में घूमते हैं। यह होनेयोग्य काल की जो पर्याय जहाँ हो, उसे कौन रोके और किसे विचार आवे ? भाई! परन्तु उसे अन्दर से प्रेम उछल जाता है, देखो! समझ में आया ?

आत्मा का शुद्ध अहिंसक स्वभाव ऐसा ज्ञायकभाव, ऐसा आत्मा का शान्त वीतरागी समरसस्वरूप। आज तो भगवान के दर्शन करते थे और ऐसा विचार आया कि देखो! यहाँ छाती में आत्मा के प्रदेश कितने दल भरे होंगे ? छाती है न भगवान की ? असंख्य प्रदेश का ऐसा जत्था पड़ा है। असंख्य चौबीसी के समय जितने तो जीव के असंख्यात प्रदेश हैं। वे सब, आत्मा के असंख्यात प्रदेश दल, अरूपी हैं; इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि अरूपी, परन्तु अरूपी अर्थात् वस्तु है वह। समझ में आया ?

ऐसे यहाँ छाती में असंख्य प्रदेश इतनी संख्या है कि असंख्य चौबीसी के समय जितने एक जीव के प्रदेश हैं। असंख्य चौबीसी किसे कहें! एक चौबीस तीर्थंकर हों, उसमें दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होते हैं और एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम होते हैं—ऐसे-ऐसे असंख्य चौबीसी के समय इतने आत्मा के प्रदेश ठूँसठूँस कर ऐसे प्रदेश भरे हैं। अरूपी घन है। समझ में आया ? लोग भगवान की मूर्ति (कहते हैं) परन्तु मूर्ति में अन्दर आत्मा है, ऐसा अन्दर था ऐसा दल, असंख्य प्रदेश का दल-पिण्ड और अकेला आनन्द और ज्ञान की पर्याय का परिणमन, महाघन। उनका तो यह प्रतिबिम्ब है। मूल वस्तु ख्याल में आये बिना प्रतिबिम्ब को किस प्रकार मानेगा यह ? आहा...! ऐसे साधर्मी के प्रति...

मुमुक्षु : प्रतिमा का तेज बहुत....!

पूज्य गुरुदेवश्री : उस प्रतिमा का तेज... उसके अन्दर आत्मा था। उसका तो यह प्रतिबिम्ब किया है बाहर के शरीर का।

ऐसे असंख्य प्रदेश यहाँ से सब ठूँसठूँस कर अन्दर भरे हैं। इतने में

असंख्य प्रदेश कितने ? असंख्य चौबीसी के समय जितने। ये तो संख्यातवाँ भाग है इतना। क्या कहा ? इसमें कितने प्रदेश हैं ? एक इतने में कितने प्रदेश ? क्योंकि यह भाग है, वह शरीर का वह संख्यातवाँ भाग है और उसके प्रदेश हैं असंख्य चौबीसी के समय जितने। इसलिए असंख्य चौबीसी का संख्यातवें भाग के जो समय उतने तो यहाँ प्रदेश हैं, पूरे दल पड़े हैं। समझ में आया इसमें ? समझ में आता है या नहीं ?

असंख्य चौबीसी के समय जितने एक जीव के प्रदेश। अब एक जीव का इतना सिरा लो, इतना तो भी वह तो संख्यातवाँ भाग है। शरीर का संख्यातवाँ भाग है न ? तब असंख्य चौबीसी के संख्यातवें भाग के यहाँ प्रदेश हैं। इतने असंख्य प्रदेश ऐसे केवलज्ञानघन से ज्ञानस्वभाव से, आनन्दस्वभाव से, अनन्त गुण से सम्पूर्ण प्रदेशों का घन पड़ा है, ऐसा पूरा घन है। ऐसे आत्मा की अनन्त निर्दोष शक्तियों का भण्डार भगवान (है)। यह तो प्रदेश की बात की परन्तु वापस एक-एक प्रदेश में अनन्त-अनन्त गुण। यह तो प्रदेश असंख्य हैं परन्तु भाव अनन्त हैं। आहा...हा...! ऐसा दल इतना घन असंख्य चौबीसी के समय जितना परन्तु यहाँ इतने-इतने में प्रदेश। आहा..हा...! और उसके एक-एक प्रदेश में, ऐसा धारावाही है कोई प्रदेश.. अनन्त गुण पड़े / बिछे हैं, ऐसे। आहा...हा...! यह आत्मा किसे कहना ? समझ में आया ?

आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम एक है, त्रिकाल रहनेवाला है। उसे रागादि है नहीं, विकल्प नहीं। दया, दान का विकल्प भी आत्मा के स्वभाव में नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा में अन्तर्मुख होकर पुण्य-पाप के विकल्परहित दृष्टि करना, स्थिरता करना, उसे अहिंसा धर्म कहते हैं, वह जिनप्रणीत अहिंसा धर्म है। आहा...हा...! गजब व्याख्या, भाई! ऐ... मगनभाई! अहिंसा परमोधर्म। 'केवलीपण्णत्तो शरणम्' आता है न ? केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणम्-परन्तु कौन सा केवलीपण्णत्तो धम्मो! ऐ..ई... न्यालचन्दभाई! यह सब वहाँ प्रतिक्रमण करते हों शाम-सबेरे। बोले मांगलिक! आहा...!

भाई ! यहाँ तो धर्मात्मा को ऐसा धर्म प्रगट हुआ है और स्वयं को प्रगट हुआ है तो स्वयं को प्रेम है और दूसरे धर्मी के प्रति भी उसे प्रेम है। कैसा प्रेम ? पहले भाषा ली है-सतत् और परम। **अनवरतं** है न ? **अनवरतं** अर्थात् अन्तर पड़े बिना / निरन्तर और उत्कृष्ट। आहा...हा...! अपने शुद्ध आनन्दस्वभाव का भी प्रेम, सतत् निरन्तर और उत्कृष्ट प्रेम। जिसे पुण्य का प्रेम और देव-गुरु का प्रेम परन्तु भगवान के प्रेम के कारण दूसरा प्रेम ऐसा हो नहीं सकता—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? और देव-गुरु-शास्त्र या धर्मात्मा के प्रति प्रेम, उसे स्त्री-पुत्र के प्रति प्रेम नहीं। दूसरे प्रकार का प्रेम अधिक होता है उसे। ऐसा अहिंसास्वरूप भगवान परमेश्वर वीतरागदेव द्वारा कथित तत्त्व का प्रेम और उसके साधनेवाले के प्रति प्रेम, उसे वात्सल्य / प्रेम कहा जाता है। बछड़े को जैसे है, वैसे अपने... है अन्दर, देखो !

ऐसी प्रीति धर्म और धर्मात्माओं के प्रति होनी चाहिए, जो तन-मन-धन... शरीर चला जाये, मन के विकल्पों में भी वही उसे विचार हो। जाओ, जाना हो तो जाओ परन्तु साधर्मी के प्रति प्रेम उसे हटता नहीं है। दुनिया में किसके प्रेम के कारण दुनिया कहेगी... समझ में आया ? तो कहते हैं कि स्वयं करे, धन को खर्च करे। लो ! धन का आया इसमें। नींद नहीं आती रात्रि में ? मलूकचन्दभाई को झोंके आते हैं। **तन-मन-धन...** कहो समझ में आया ? इसमें तो झोंके उड़ जायें ऐसा है। इसमें क्यों झोंका आता होगा पता नहीं पड़ता ? साताशीलया शरीर, सहज-सहज होता हो तो लेना। कहते हैं कि यह तन, मन, और धन। एई... नेमिदासभाई ! आहा... ! लो ! यहाँ तो धन खर्च कर, कहते हैं। लो ! यह लक्ष्मी है, उसके प्रति स्त्री-पुत्र के लिये खर्च करता है, उसकी अपेक्षा धर्म के प्रेम और साधर्मीजन के प्रेम के लिये खर्च करे—ऐसा भाव होता है-ऐसा कहना है। यह तो हुआ तो ठीक, ऐसा भाव उसे आवे न ! समझ में आया ? पुत्र के विवाह में कैसे लाख, सवा लाख खर्च कर डालता है। उसके प्रमाण में खर्चे और पैसे हों उसे ? कहो ! एक लाख खर्च किये या नहीं तुम्हारे लड़की में ? एक लाख।

मुमुक्षु : इसके भाई ने खर्च किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके भाई ने परन्तु इसके भाई ने खर्च किये... फिर यह मन्दिर -बन्दिर या ऐसा कोई धर्मात्मा के लिये कुछ होगा या नहीं ? परन्तु यह ऊपर-ऊपर के सब... मूल वस्तु स्वयं को पता नहीं पड़ता, इसलिए प्रेम नहीं आता। अपना स्वभाव, आहा...हा... ! ऐसे जीव साधर्मी, उसे साधनेवाले, ऐसे जीवों के प्रति **तन-मन-धन सर्वस्व खर्च करके अपनी प्रीति को पाले।** अपनी प्रीति पालन करे। कहो, समझ में आया ? स्वयं को यह राग का भाव ऐसा आवे और स्वभाव की प्रीति भी। तन-मन-धन सब जाता होवे, खर्च करके भी अपने आत्मधर्म का प्रेम नहीं जाये। शुद्ध चिदानन्द प्रभु आत्मा के प्रेम प्रीति, उसकी दृष्टि उसे प्रेम कहते हैं। कहो ! यह वात्सल्य अंग कहा। सम्यग्दृष्टि का यह सातवाँ अंग, सातवाँ आचार, धर्मी का यह लक्षण। धर्मी का दूसरा लक्षण होता नहीं कि वह अमुक करता हो और अमुक करता हो, उसका लक्षण यह है।

अब आठवाँ प्रभावना अंग। आठवाँ बोल है। सम्यग्दृष्टि आत्मा के शुद्ध आनन्द की प्रीतिवाला और जिसे पुण्य-पाप के परिणाम में भी प्रीति उड़ गयी है, ऐसा (है)। समझ में आया ? जिसे आत्मा के पवित्र निर्दोषस्वभाव के प्रेम के समक्ष शुभ-अशुभभाव का प्रेम भी जिसे उड़ गया है, और उनके बन्धन तथा उनके फल का प्रेम भी छूट गया है—ऐसा धर्मी अपने स्वभाव के प्रति प्रेम में सतत निरन्तर जागृत होता है और ऐसे धर्म के साधनेवालों के प्रति भी उसका उत्कृष्ट प्रेम प्रसिद्ध होता है। कहो, समझ में आया ? यशोविजय कहते हैं 'सांचु सगपण साधर्मी तणुं रे...' आता है न ? 'बीजुं सर्वे जंजाल रे, भविकजन, साचुं सगपण साधर्मी तणु रे लाल...' सम्यग्दृष्टि ज्ञानी यथार्थ तत्त्वदृष्टिवाला... जिसने विपरीत दृष्टि छोड़कर यथार्थ दृष्टि की है—ऐसे धर्मात्मा के प्रति का सच्चा सगपण साधर्मी, दूसरा सब जंजाल। समझ में आया ? स्त्री-पुत्र के प्रति प्रेम वह राग, वह दूसरे प्रकार का जंजाल। यह विकल्प उस भूमिका में होता है। स्वरूप में निर्विकल्प प्रेम वह अपना; सविकल्प प्रेम वह व्यवहार। प्रभावना-सम्यग्दृष्टि का आठवाँ अंग। ●●

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

ज्ञानियों का चिंतवन

अपनैंही गुन परजायसौं प्रवाहरूप,
परिनयौ तिहूं काल अपनै अधारसौं।
अन्तर-बाहर-परकासवान एकरस,
खिन्नता न गहै भिन्न रहै भौ-विकारसौं ।।
चेतनाके रस सरवंग भरि रह्यौ जीव,
जैसे लौंन-कांकर भरयौ है रस खारसौं।
पूरन-सुरूप अति उज्जल विग्यानघन,
मोकौं होहु प्रगट विसेस निरवारसौं ।।15।।

अर्थः- जीव पदार्थ सदैव अपने ही आधार से रहता है और अपने ही धाराप्रवाह गुण-पर्यायों में परिणमन करता है, बाह्य और अभ्यन्तर एकसा प्रकाशवान रहता है कभी कमती नहीं होता, वह संसार के विकारों से पृथक् है, उसमें चैतन्यरस ऐसा ठसाठस भर रहा है, जैसे कि नमक की डली खारेपन से भरपूर रहती है। ऐसा परिपूर्ण स्वरूप, अत्यन्त निर्विकार, विज्ञानघन आत्मा मोह के अत्यन्त क्षय से मुझे प्रगट होवे ।।15।।

काव्य - 15 पर प्रवचन

बनारसीदासजी कहते हैं कि मुझे पूर्ण आत्मा की प्राप्ति होओ।

भगवान आत्मा कैसा है ?कि अपने गुण के भेद से प्रवाहरूप है। सदा अपने परिणमन स्वभाव से परिणम रहा है। पंचास्तिकाय में आता है न! **'द्रव्ययात्मलाभहेतुः परिणामः'** वैसे ही यहाँ कहते हैं कि आत्मा सदा अपने परिणमन स्वभाव से भरा है।

मार्ग बहुत सूक्ष्म है भाई! सुखी होना हो, उसके लिए यह बात है। जगत धर्म के बहाने बहुत लुटता है। मनुष्यदेह पाने के बाद भी ऐसी सत्य बात का मिलना दुर्लभ है। **"दुर्लभ मानव भव उसमें दुर्लभ आतम लाभ..।"**

भगवान आत्मा में अभेद और गुण के भेद का प्रवाह सदा बह रहा है। अर्थात् अभेद और भेद दोनों सदा हैं। अपने पारिणामिकभाव के त्रिकाल आधार से सदा एकरूप है। द्रव्य आधार है और गुण आधेय है, परन्तु दोनों में भेद नहीं, अभेद है। वस्तु त्रिकाल एकरूप है।

नियमसार में आता है न! पर्याय, बाह्य तत्त्व है। संवर, निर्जरा और मोक्ष वह बाह्यतत्त्व है। एकरूप तत्त्व वह अन्तःतत्त्व है, उसकी अपेक्षा से अंशरूप दशा वह बाह्यतत्त्व है। सदृश ध्रुववस्तु और उसकी निर्मलदशा एक सरीखी प्रकाशमान रहती है। इतना भेद भी खटकता है। आत्मा आधार और उसके आधार से रहते गुण, वे सदा एकरूप प्रकाशमान हैं। जैसे नमक की डली में अकेला क्षाररस ही भरा है; वैसे ही भगवान आत्मा में चैतन्यरस लबालब भरा है। वह कभी कम नहीं होता और भव के विकार से भिन्न रहता हैं। धर्मी जीव अपने आत्मा का ऐसा विचार करता है, परन्तु मैं कर्म के सम्बन्धवाला हूँ, रागवाला हूँ, बंधवाला हूँ, मैं राग को तोड़ता हूँ– ऐसा विचार नहीं करता।

जिसमें संसार का विकार नहीं वह आत्मतत्त्व है। **'खिन्नता न गहै'**– जिसमें कोई कमीपना रहे नहीं, कमीपना हो नहीं– ऐसा ही आत्मा का स्वरूप है। भगवान आत्मा उदय भाव के विकार से त्रिकाल भिन्न रहता है। भले ही वह मानें कि मैं इस उदयभावरूप हो गया; परन्तु वह कभी उदयभावरूप होता नहीं। ज्ञायकभाव तो सदा ज्ञायकभावरूप ही रहा है। प्रवचनसार की 200वीं गाथा में कहा है कि इसने अपने को अन्यथा अध्यवसित किया है कि मैं शरीर और रागवाला हूँ– ऐसा खोटा निर्णय अज्ञानी ने खड़ा किया है, परन्तु ज्ञायकभाव कभी शरीर या रागरूप नहीं होता।

जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधे, आत्मा उस भाव से भी भिन्न है। भव का भाव वह कोई आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है।

यह तो नाटक समयसार है। यह बात सुनने को भी नहीं मिलती तो विचारे कब ? अरे ! जिन्दगी चली जाती है, मृत्यु समीप होती जाती है.. ऐसा

अवसर मिलना दुर्लभ है। चक्रवर्ती की सम्पदा मिलना सहज है; परन्तु ऐसे चैतन्यरस के घोलन का काल मिलना अनन्तकाल में दुर्लभ है।

इस जीवद्वार में जीव की व्याख्या की है। जीव तो उसे कहते हैं कि जिसमें सर्वांग में चेतना का प्रवाह बहता है। जैसे गन्ने में सर्वांग मिठास है, शक्कर में सर्वांग मिठास है, नमक की डली सर्वांग खारी है; वैसे ही चेतन मे अनादि से सर्वांग चेतनरस भरा है। ऐसा ठसाठस चेतनरस भरा है कि अनन्तकाल तक केवलज्ञान की अनन्त पर्यायें हों, परन्तु उस रस में कमी नहीं आती, कमी नहीं होती । अरे! अन्दर से उसका विश्वास तो ला! संदेह में डाँवाडोल रहेगा तो चेतन का अनुभव नहीं होगा।

भगवान आत्मा चैतन्यरस से भरपूर तत्त्व है। विकल्प का रस है, वह चैतन्यरस नहीं है। इक्कीस प्रकार के उदयभाव हैं, उनसे आत्मा खाली है। उदयभाव से शून्य और चेतनभाव से पूर्ण– ऐसा आत्मा वह आत्मा है और ऐसे आत्मा का अनुभव वह धर्म है, परन्तु ऐसा समझ में नहीं आवे तो हमें करना क्या ?ऐसा करके क्रियाकाण्ड करके अज्ञानी धर्म होने का संतोष कर लेता है, परन्तु भाई! समझ में नहीं आवे –ऐसा कैसे हो सकता है ?

मुझे समझ में नहीं आता तूने ऐसा शल्य धारण कर रखा है। अपनी जाति अपने को ही समझ में न आवे! स्वयं अपने को किसलिए छुपा रखे ? अपना स्वरूप अवश्य ही समझ में आवे– ऐसा है; परन्तु इसने कभी दरकार ही नहीं की।

जैसे नमक की डली और उसका क्षाररस अलग नहीं है, मात्र उनमें नाम भेद है; वैसे ही चैतन्य और उसका चेतनरस अलग नहीं है, मात्र नाम भेद है। आत्मा चैतन्यरस से भरा है। यह तेरे घर की बात चलती है। भाई! निजघर की पहचान बिना कभी धर्म नहीं हो सकता।

धर्म का धारक धर्मी कैसा और कितना है– इसकी खबर बिना दशा में धर्म कहाँ से हो ?इसने बाह्य क्रियाकाण्ड में धर्म मानकर मनुष्यभव खो दिया है। वीतराग सर्वज्ञप्रभु का पंथ अर्थात् तेरे सर्वज्ञस्वभावी प्रभु का पंथ,

उसमें अन्तर में जाना। तू सर्वज्ञ अर्थात् सबको जानने के स्वभाववाला है। ज्ञान के रस से भरा है।

'पूरन स्वरूप अति उज्जवल विज्ञानधन'– भगवान आत्मा कैसा है? वह परिपूर्ण स्वरूप है, अति उज्ज्वल निर्विकार है, जिसमें विकार की वासना का अभाव है, विज्ञानघन है। जैसे सर्दी में जमे हुए घी में अँगुली तो प्रवेश करती ही नहीं, परन्तु चाबी घुसाना भी मुश्किल पड़ता है; वैसे ही आत्मा ऐसा विज्ञानघन है कि उसमें दया दानादि का कोई भी विकल्प प्रवेश नहीं कर सकता। ऐसा आत्मा मुझे प्रकट होओ! सर्व मलिनता के अभाव से सर्वज्ञपद को लेता हुआ मेरा आत्मा प्रकट होओ– धर्मी की ऐसी भावना होती है। धर्मी को व्यवहार आता है, वह अलग बात है; परन्तु उसको व्यवहार करने की भावना नहीं होती।

धर्मी व्यवहार को करने योग्य नहीं मानता। **'मोकौं होऊ प्रगट विसेस निरवारसौ'**– मोह के अत्यन्त क्षयपूर्वक मेरा निर्विकार आत्मा मुझको प्रगट होओ। ऐसी ही भावना धर्मी की होती है। इससे विरूद्ध भावना हो, वह धर्मी की भावना नहीं, 'विसेस निरवार सौं' अर्थात् रागादि मोह का विशेषप्रकार से नाश होकर–सर्वथा नाश होकर, विज्ञानघन आत्मा जैसा है वैसा क्षायिकभावपने प्रकट होओ– ऐसी धर्मी की भावना होती है।

देखो! एक–एक काव्य में कितना भाव भर दिया है! पूरा–पूरा भर दिया है।

हम सम्प्रदाय में दो–दो हजार श्लोक दो–तीन घण्टे में कंठस्थ बोल जाते थे... रात्रि में किसी से बात नहीं करते थे, सबके साथ में बैठकर कंठस्थ किए हुये दो–दो हजार श्लोक एकसाथ बोल जाते, परन्तु आत्मा की पहिचान बिना वह क्या काम का? हमारे गुरु तो ऐसे थे कि चतुर्थकाल के साधु कहलाते, परन्तु अरे! यह बात उनके कान में भी नहीं पड़ी। मूलवस्तु के ज्ञान बिना क्रिया बहुत की, वर रहित बारात जोड़ दी।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी ऐसी भावना करता है कि मेरी दशा में सम्पूर्ण

अशुद्धता मिटकर भगवान आत्मा जैसा पूर्ण निर्विकार है, वैसा मुझे प्राप्त होओ।

अब नाटक समयसार जीवद्वार का 16वाँ काव्य शुरू होता है। इस काव्य में पण्डित बनारसीदासजी ने साध्य-साधक का यह स्वरूप अथवा द्रव्य और गुण-पर्यायों की अभेदता बतायी है।

साध्य-साधक का स्वरूप व द्रव्य और गुण-पर्यायों की अभेद विवक्षा

जंह ध्रुवधर्म कर्मछय लच्छन,
सिद्धि समाधि साधिपद सोई।
सुद्धपयोग जोग महिमंडित,
साधक ताहि कहै सब कोई।।
यौं परतच्छ परोच्छ रूपसौं,
साधक साधि अवस्था दोई।
दुहुकौ एक ग्यान संचय करि,
सेवै सिववंछक थिर होई।।16।।

अर्थः- सम्पूर्ण कर्म-समुदाय से रहित और अविनाशी स्वभाव सहित सिद्धपद साध्य और मन, वचन, काय के योगों सहित शुद्धोपयोगरूप अवस्था साधक है। उनमें एक प्रत्यक्ष और एक परोक्ष है, ये दोनों अवस्थाएँ एक जीव की हैं, ऐसा जो ग्रहण करता है वही मोक्ष का अभिलाषी स्थिर-चित्त होता है।

भावार्थः- सिद्ध अवस्था साध्य है और अरहंत, साधु, श्रावक, सम्यक्त्वी आदि अवस्थाएँ साधक हैं; इनमें प्रत्यक्ष- परोक्ष का भेद है। ये सब अवस्थाएँ एक जीव की हैं ऐसा जाननेवाला ही सम्यग्दृष्टि होता है।।16।।

काव्य - 16 पर प्रवचन

सिद्धपद साध्य है और सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि साधक हैं। धर्मी को अपनी मोक्षदशा साध्य है और सम्यक्त्वादि की निर्मल निर्विकल्प दशा साधक है अर्थात् पूर्ण शुद्धता साध्य है और अपूर्ण शुद्धता साधक है; व्यवहाररत्नत्रय साधक नहीं है।

'जंह ध्रुवधर्म कर्मछय लच्छन'– यहाँ ध्रुवधर्म माने त्रिकाली द्रव्य की बात नहीं; परन्तु सिद्धदशा, वह ध्रुवधर्म है, वह साध्य है जो कि कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुई है। जहाँ कर्म और नोकर्म छूट गये हैं– ऐसा सिद्धपद वह सिद्धिपद अथवा समाधिपद है, वह धर्मी का साध्य है। अज्ञानी जीव को तो विकार साध्य है और उसका साधन मिथ्यात्वभाव है। यहाँ तो धर्मी जीव के साध्य–साधन का कथन चलता है।

सर्वज्ञ वीतराग परमदेव ने जो सिद्धपद निश्चल है, उसको ध्रुवधर्म कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य देव ने भी श्री समयसार की पहली गाथा में सिद्धगति को ध्रुव, अचल और अनुपम कही है। उसकी यह व्याख्या है।

'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ।
समझाव्यो संक्षेपमा, सकलमार्ग निर्ग्रन्थ।।'

आत्मसिद्धि श्रीमद् राजचंद्र।

अपनी पूर्ण शुद्धता–परिपूर्णता प्राप्त होना, वह साध्य की सिद्धि है, समाधि है। जिसमें पूर्ण समाधि हो गई– ऐसी सिद्धदशा, वह साध्य है।

'शुद्धोपयोग जोग महिमंडित'– सिद्धदशा किसप्रकार सधती है?कि शुद्धोपयोग के साधन से सिद्धदशा साध्य होती है। वह शुद्धोपयोग भले ही मन, वचन, काया के योगसहित है और आत्मा के प्रदेशों में भी कंपन है; फिर भी शुद्धोपयोग है, वह साधक है। वह शुद्धोपयोग क्या है?शुभाशुभ विकल्प रहित शुद्धात्म व्यापार, जो कि अत्यन्त निर्विकल्प वीतरागी परिणाम है, वह शुद्धोपयोग है।

आत्मा शुद्ध आनन्द स्वरूप शुद्धस्वभाव की मूर्ति है। उसके दर्शन, ज्ञान और चारित्र के आंि ाक शुद्ध परिणाम चौथे गुणस्थान से शुरू हो जाते हैं। अज्ञानी जीव को वस्तु शुद्ध आनन्दकन्द है ऐसा भान नहीं है। इसकारण वह दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभराग को धर्म का साधन मानता है और चौथे गुणस्थान में शुभराग ही होता है– ऐसा मानता है। परन्तु वह शुभराग धर्म नहीं है, साध्य का साधन नहीं है। सन्त–धर्मी जीव तो शुद्धोपयोग को ही साधन कहते हैं।

भगवान आत्मा वीतराग पिण्ड है। भगवान को जैसा स्वभाव पर्याय में प्रकट है, वैसा ही इस आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है। ऐसे स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणतारूप शुद्धोपयोग, वह साधन है। शरीर की क्रिया या शुभराग साधन नहीं है; परन्तु शुद्धोपयोग साधन है।

'यों परतच्छ परोच्छ रूपसौं, साधक साधि अवस्था दोई-' आत्मा की पूर्ण अवस्था-सिद्धदशा जो कि प्रत्यक्ष है, वह साध्य है और अपूर्ण शुद्ध-अवस्था भी वेदन में तो प्रत्यक्ष आती है; परन्तु प्रत्यक्ष जनाती नहीं है; इसलिए उसे परोक्षदशा कहा है, वह साधन है। साधक को वस्तु का पूर्णस्वरूप और उसकी ज्ञान-आनन्द आदि पर्यायें प्रकट ज्ञात नहीं होतीं; अत: साधक के शुद्धोपयोग को परोक्ष कहा है।

भाई ! तेरी क्या बात करनी ! तू तो अखण्डानन्द प्रभु है, उसके आनन्द के स्वाद के आगे तो इन्द्र का इन्द्रासन भी सड़े हुए तिनके जैसा लगता है, तू ऐसा अतीन्द्रिय सुखसागर है। वह भी किसने कहा है ? अरे ! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने तुझे आनन्द का सागर कहा है। यह कोई अज्ञानी या अल्पज्ञ द्वारा कही हुई बात नहीं है। ऐसे निज आत्मा की सन्मुख दृष्टि है, स्वसन्मुख ज्ञान है, अंश से लेकर विशेष-विशेष स्थिरता है; जो सिद्धदशा की साधक है, उस दशा को यहाँ परोक्ष कहा है और सिद्धदशा प्रत्यक्ष है, क्योंकि उसमे अपने असंख्य प्रदेश, अनन्तगुण और सम्पूर्ण लोकालोक प्रत्यक्ष ज्ञात होते हैं।

आत्मा छह द्रव्यों का ज्ञान करे- ऐसा है, परन्तु छह द्रव्यों में आवे; वैसा नहीं। जैसे तुम्हें छह लड़कों का ज्ञान होता है; परन्तु तुम उनमें आ नहीं जाते ।

साधकदशा और साध्यदशा ये दोनो अवस्थायें है, द्रव्य-गुण नहीं। द्रव्य और गुण तो नित्य ध्रुव है। द्रव्य माने त्रिकाली शक्ति का पिण्ड और गुण माने शक्ति। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि शक्तियाँ हैं, स्वभाव है और द्रव्य, स्वभाववान है। साधक और साध्य यह वस्तु की अवस्था-दशा है- ऐसा वस्तु का स्वरूप है। इसके भान बिना धर्म नहीं हो सकता। अपनी आत्मा के भान बिना प्रतिक्रमण और सामायिक आदि किसप्रकार हो ? धर्म की शुरूआत ही आत्मा के भान से होती है।

आगे बढ़ने पर मुनिदशा आती है। उसकी क्या बात करना! उसकी तो तुझे खबर ही नहीं है। मुनि के तो अन्तर में तीन कषायों का नाश हुआ है और बाह्य में भी नग्न दिगम्बर दशा है, उसको भगवान ने मुनिदशा कहा है।

'दुहु कौ एक ग्यान संचय करि, सेवै सिव बंछक थिर होई' जो जीव मोक्ष का वांछक है, वह साधक और साध्य दोनों अवस्था एक जीव की ही है- ऐसा जानकर उसका सेवन करता है। अर्थात् मोक्षार्थी जीव एकपने को लक्ष्य में रखता है, दोपने का सेवन नहीं करता।

अभी बाहर में अराजकता लगती है, परन्तु इस शुभराग से धर्म होता है, पुण्य से धर्म होता है, व्यवहार से धर्म होता है ऐसी मान्यता वह आत्मा में अराजकता है। अर्थात् उसमें आत्मा की हत्या होती है। "वीतराग का धर्म तो वीतरागभाव से ही शुरू होता है।" वीतराग का धर्म वस्तु का स्वभाव है।

धर्मीजीव अपूर्णदशा और पूर्णदशा को जानता है, परन्तु सेवा तो एक शुद्धात्मा की ही करता है। स्वरूप में स्थिर होकर आत्मा की सेवा करता है, दो पर लक्ष्य नहीं रखता। ज्ञान दोनों दशाओं का होता है, परन्तु सेवा तो एक आत्मा की ही करता है। सेवा करता है माने आत्मा के शुद्धस्वरूप में एकाग्र होता है। उसको उपासना भी कहते हैं।

छइवीं गाथा में उपासना की बात आती है न! परद्रव्य से लक्ष्य छोड़कर, स्वद्रव्य का लक्ष्य करके उसकी उपासना करता है, उसको ध्रुव-द्रव्य शुद्ध कहने में आता है। शुद्ध चैतन्य द्रव्य के सन्मुख ढलने से शुद्धता प्रकट हो, उसको ध्रुव (द्रव्य) शुद्ध है -ऐसा कहा जाता है। छठवीं गाथा में यह ध्रुवशुद्ध की बात है और यहाँ पूर्ण और अपूर्ण शुद्ध पर्याय के ज्ञान की बात है। ज्ञान दोनो का है, पर सेवा एक शुद्धात्मा की करता है।

'सेवे सिव वंछक थिर होई।' साध्य और साधक दोनों अवस्थायें एक जीवद्रव्य की हैं ऐसा जो ग्रहण करता है वही मोक्ष का अभिलाषी स्थिरचित्त होता है- स्वरूप में स्थिर होता है। ऐसी यह साधकदशा है।

जिसका बहाव स्वभाव की तरफ है, उसको यह सरल पड़ता है,

जिसका बहाव स्वभाव की तरफ हुआ, वह तो नज़दीक आ गया; जिसका बहाव अज्ञान की तरफ है, वह तो दूर है। चैतन्य भगवान अनन्त आनन्द और ज्ञान का पाताल कुंआ है। जैसे ऊपर में पानी कम हो, परन्तु पाताल में से पानी के प्रवाह आया ही करते हैं, वैसे ही चैतन्य पर दृष्टि देकर अनुभव करे तो अनुभव करते-करते अनन्तकाल व्यतीत हो जाये, तथापि चैतन्य पाताल में से गुणों का माल कम नहीं होता।

भावार्थ यह है कि सिद्धअवस्था साध्य है और अरहंत, साधु, श्रावक और सम्यक्त्वी आदि अवस्थायें साधक है। देखो! सम्यक्त्वी को भी साधक कहा और अरहंत को भी साधक कहा है। जिनमें पूर्णता नहीं, उन सभी अवस्थाओं को साधक कहा है। शुद्धोपयोग है, वह साधक है- ऐसा कहा है। परन्तु शुद्धोपयोग तो निरन्तर नहीं रहता फिर भी शुद्धपरिणति है, वह शुद्धोपयोग ही है। शुद्धस्वरूप आत्मा के व्यापाररूप शुद्धपरिणति भी शुद्धोपयोग ही है। भले ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद छोड़कर ज्ञान एकाकार हो, वह शुद्धोपयोग है यह सत्य है, परन्तु जैसा द्रव्य-गुण है, वैसी ही उसकी परिणति है, उसको भी शुद्ध उपयोग कहा जाता है।

जैसे दूज का चन्द्र उगे या पूर्णिमा हो- ये दोनों ही अवस्थायें चन्द्रमा की हैं; वैसे ही शुद्ध ज्ञायकभाव की प्राप्ति से लेकर सिद्धदशा तक की समस्त अवस्थायें एक जीव की हैं, कोई भी दशा कर्म की अथवा कर्म से हुई नहीं है। समस्त दशायें मेरे भगवान आत्मा की एक की ही हैं। जो ऐसा जानता है, वह सम्यग्दृष्टि है।

अब 16 वें कलश के पद्यानुवादरूप 17 वें पद में द्रव्य और गुणपर्याय की भेद विवक्षा समझाते हैं-

द्रव्य और गुण-पर्यायों की भेद-विवक्षा

दरसन-ग्यान-चरन त्रिगुनातम,
समलरूप कहिये विवहार।
निहचै-दृष्टि एकरस चेतन,

भेदरहित अविचल अविकार।
सम्यकदसा प्रमान उभै नय,
निर्मल समल एक ही बार।
यौं समकाल जीवकी परिनति,
कहैं जिनेंद गहै गनधार॥17॥

अर्थः- व्यवहारनय से आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र - तीन गुणरूप है; यह व्यवहारनय निश्चय की अपेक्षा अभूतार्थ है, निश्चयनय से आत्मा एक चैतन्यरससम्पन्न, अभेद, नित्य और निर्विकार है। ये दोनों निश्चय और व्यवहारनय सम्यग्दृष्टि को एक ही काल में प्रमाण हैं; ऐसी एक ही समय में जीव की निर्मल समल परिणति जिनराज ने कही है और गणधर स्वामी ने धारण की है॥17॥

काव्य - 17 पर प्रवचन

सर्वज्ञ तीर्थंकर परमदेव दिव्यध्वनि में ऐसा कहते थे और गणधरदेव (उस वाणी को) झेलते थे। महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान में भी भगवान की वाणी खिर रही है और गणधरदेवादि सुन रहे हैं। उस वाणी में क्या आता है, वह कहते हैं-

आत्मा की- शुद्ध ध्रुव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता ये तीन भेद कहे जाते हैं, वह व्यवहार है, समल है, मेचक है अर्थात् भेद है वे तीन भेद हैं, वे निश्चय से अभूतार्थ हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तो निश्चय है, परन्तु उनमें भेद किया; इसलिए वह अभूतार्थ हो गया- भेद हो गया। आश्रय तो अभेद का करना है। भेद का आश्रय करने योग्य नहीं, इसकारण भेद को व्यवहार और मलयुक्त कहा है। आत्मा के स्वरूप में श्रद्धा-ज्ञान अभेद हो जाये, वह तो निश्चय है। भेद का आश्रय करने से विकल्प उठता है- इसकारण भेद को समल कहा है। श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की पर्याय (पर्याय होने से आश्रय का विषय न होने की अपेक्षा) स्वयं व्यवहार है।

क्रमशः

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

इनके पश्चात् ज्ञान का और ह्रास होता गया और 123 वर्षों में पाँच आचार्य मात्र ग्यारह अंगों के ज्ञाता हुए —

नक्षत्राचार्य	18 वर्ष
जयपाल	20 वर्ष
पाण्डुस्वामी	39 वर्ष
ध्रुवसेन	14 वर्ष
कंसाचार्य	32 वर्ष

क्षयोपशम ज्ञान की मंदता एवं एकाग्रता में उत्तरोत्तर कमी के कारण ज्ञान का बराबर ह्रास होता गया और फिर दशांग, नवांग एवं अष्टांग धारी होते रहे। ऐसे मात्र चार आचार्य हुए जिनके नाम निम्नानुसार हैं—

सुभद्र	6 वर्ष
यशोभद्र प्रथम	18 वर्ष
यशबाहु (भद्रबाहु)	23 वर्ष
लोहार्य द्वितीय	50 वर्ष

इनके पश्चात् 118 वर्षों में पाँच एकांगधारी आचार्य हुए, जिन्होंने इस श्रुत परम्परा को आगे बढ़ाया—

आचार्य अर्हद्बलि	28 वर्ष
आचार्य माघनन्दि	21 वर्ष
आचार्य धरसेन	19 वर्ष
आचार्य पुष्पदंत	30 वर्ष
आचार्य भूतबलि	20 वर्ष

इनमें अन्तिम तीन आचार्यों में आचार्य धरसेन ने अपने अवशिष्ट ज्ञान को आचार्य भूतबलि और पुष्पदन्त को प्रदान किया और आगम के एक अंग को नष्ट होने से बचा लिया।

इस प्रकार महावीर स्वामी के पश्चात् 683 वर्षों तक विशिष्ट श्रुतज्ञान के धारक आचार्यों की परम्परा चलती रही। इसी समय दूसरी आचार्य परम्परा में आचार्य परम्परा में आचार्य गुणधर भी विद्यमान थे। ये पाँचवें ज्ञानप्रवाद पूर्व की दसवीं वस्तु के तृतीय प्राभृत 'पेज्जदोसपाहुड' के ज्ञाता थे। इन्होंने कषायप्राभृत की रचना की, जो कि आचार्य परम्परा से आर्यमंक्षु एवं नागहस्ती नामक आचार्यों को प्राप्त हुई। उनसे ज्ञान प्राप्त कर यतिवृषभ आचार्य ने प्राकृत में 6000 श्लोक प्रमाण सूत्रवृत्ति रची, जिसको चूर्णीसूत्र कहा जाता है।

इसके कुछ उपरान्त इन्हीं आचार्यों की परम्परा में हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार आदि अध्यात्म ग्रन्थों की रचना की। इसे 'द्वितीय श्रुतस्कन्ध' कहते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने अष्टपाहुड आदि ग्रन्थों की रचना प्राकृत भाषा में करके एक अभूतपूर्व कार्य किया। देश-समाज, श्रावक-श्राविकाओं तथा मुनियों-आर्यिकाओं—सभी के लिए उपयोगी साहित्य का सृजन किया। उनके ग्रन्थों की जितनी टीकाएं लिखी गई हैं, उतनी किसी अन्य आचार्य के ग्रन्थों पर नहीं मिलती हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चात् गृद्धपिच्छ आचार्य उमास्वामी, समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि आदि कई आचार्य एक के बाद एक होते गए तथा धर्म एवं संस्कृति को अपने ज्ञान से पल्लवित करते रहे। सातवीं शताब्दी के आचार्य अकलंक बहुत प्रसिद्ध हुए। ये जैनन्याय के प्रतिष्ठाता थे तथा प्रकाण्ड पंडित, धुरंधर शास्त्रार्थी और प्रकृष्ट विचारक थे। जैनन्याय को इन्होंने जो रूप दिया, उसे ही उत्तरकालीन जैन ग्रंथकारों ने अपनाया। बौद्धों के साथ भी इनका खूब संघर्ष रहा। ये स्वामी समन्तभद्र के द्वारा प्रवर्तित जैनन्याय परम्परा के सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। इन्होंने 'आप्तमीमांसा' नामक ग्रंथ पर 'अष्टशती' नामक भाष्य की रचना की थी। *क्रमशः*

साभार : स्वाध्याय का स्वरूप

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिवर

आप भगवान आचार्य कुन्दकुन्ददेवजी के 'नियमसार' ग्रंथ की टीका लिखनेवाले परम अध्यात्मिक निर्ग्रंथ मुनि भगवंत थे। आपका नाम 'पद्मप्रभ' था। 'मलधारी' शब्द मुनीन्द्र भगवन्त के लिए दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों आम्नाय में प्रचलित है। अत: आप महामुनिन्द्र भगवंत थे।

आपने स्वयं को सुकविजन पयोजमित्र, पंचेन्द्रियप्रसारवर्जित व गात्रमात्र परिग्रही बताया है। आपके गुरु का नाम श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव था। मद्रास प्रान्त के 'पटशिवपुरम्' ग्राम के शिलालेखानुसार माण्ड़लिक त्रिभुवनमल भोजदेव चोल्ल, हेजरा नगर पर राज्य कर रहे थे, तब वहाँ एक जिनमंदिर बनवाया गया था। उस समय मुनीन्द्र पद्मप्रभलधारीदेव व उनके गुरु वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीदेव वहाँ विद्यमान थे। इस पर से अनुमान है, कि आप दक्षिण के मुनीन्द्र भगवंत थे।

आपने अपनी टीका में अध्यात्म के गहन गम्भीर भाव भरे हैं। उसमें दर्शाया है, कि 'मोक्ष व मोक्षमार्ग का आश्रयरूप कारण (बीज) निजात्मस्वभाव प्रत्येक आत्मा में ये वर्तमान में ही विद्यमान है; उसकी दृष्टि, महत्ता, मूल्य, ज्ञान, श्रद्धान, आचरण में नहीं लाकर; पर, कर्म व वर्तमान स्वपर्याय जितना ही स्वयं का श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करने से प्रत्येक जीव संसार में दुखी हो रहा है'।

आपका परिचय देते हुए नियमसार टीका की प्रस्तावना में बताया है, कि—आपने भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे परम गहन आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तरवेदन के साथ मिलाकर, इस नियमसार ग्रंथ की टीका की रचना की है। इस ग्रंथ में आये हुए कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं। साथ में वे अध्यात्म-मस्ती व भक्तिरस से भरपूर हैं। अध्यात्मिककवि के रूप में श्री पद्मप्रभमलधारीदेव का स्थान जैन साहित्य में

अति उच्च है। टीकाकार मुनिराज ने गद्य व पद्य के रूप में परम पारिणामिक-भाव को तो बहुत ही गाया है। सम्पूर्ण टीका मानों, कि परमपारिणामिक-भाव का और तदाश्रितमुनिदशा का एक महाकाव्य हो इस भांति मुमुक्षु हृदय को मुदित करती है। परमपारिणामिकभाव, सहज सुखमय मुनिदशा और सिद्ध जीवों की परमानंदपरिणति के प्रति भक्ति से मुनिवर का चित्त मानों, कि उल्लसित हो रहा है और उस उल्लास को व्यक्त करने के लिए उनके पास शब्द अतिशय कम पड़ते हों, ऐसा उनके मुख से प्रसंगोचित अनेक उपमा अलंकार द्वारा व्यक्त होता है। अन्य अनेक उपमाओं के साथ, मुक्ति, दीक्षा आदि को बारबार स्त्री की उपमा बे-धड़क दी है, जिससे आत्ममस्त महामुनिवर के ब्रह्मचर्य का अतिशय जोर सूचित होता है। संसार दावानल समान है, और सिद्धदशा तथा मुनिदशा सहजानन्दमय है—ऐसे भाव के प्रवाह का पूरी टीका में ब्रह्मनिष्ठ मुनिवर ने अलौकिक रीति से सतत सर्जन किया है और स्पष्टरूप से दर्शाया है, कि मुनियों के व्रत, नियम, तप, ब्रह्मचर्य, त्याग, परिषहजय, आदिरूप कोई भी परिणति हठ से, खेदयुक्त, कष्टजनक या नरकादि के भयमूलक नहीं होती, परंतु अन्तरंग आत्मिक वेदन से होती परम परितृप्ति के कारण से सहजानंदमय होती है—कि जिस सहजानंद के पास संसारिओं के कनक कामिनीजनित कल्पित सुख उपहासमात्र और घोर दु:खमय भासते हैं। यथार्थतया मूर्तिमंत मुनिपरिणति समान यह टीका, मोक्षमार्ग में विहार करते मुनिवरों की सहजानंदमय परिणति का तादृश चितार देती है। इस काल में ऐसी यथार्थ आनंदनिर्भर मोक्षमार्ग की प्रकाशक टीका मुमुक्षुओं को समर्पित करके टीकाकार मुनिवर ने महान उपकार किया है।

आपने नियमसार ग्रंथ टीका व पार्श्वनाथस्तोत्र दो ही रचना रची है।

आपका समय ई. सा. की 12 वीं शताब्दी का मध्यपाद मानने में आता है।

'नियमसार की तात्पर्यवृत्ति टीका' के रचयिता मुनिवर पद्मप्रभमलधारिदेव भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– सर्प काँचली उतारता है, उसको कष्ट नहीं होता, हल्कापन होता है।

उसी प्रकार– ज्ञानी राज्य और भोग दोनों को छोड़कर मुनि होकर स्वरूप साधना करते हैं, आनन्दित रहते हैं।

जिस प्रकार– सिद्ध भगवान जानते देखते हैं।

उसी प्रकार– जीव भी जानने–देखने के स्वभाव रूप रहता है।

जिस प्रकार– बावड़ी का पानी स्वयं गमनरूप क्रिया से रहित है। फिर भी मछलियों को तैरने (गमन करने) में निमित्त होता है।

उसी प्रकार– धर्म द्रव्य स्वयं गमनरूप क्रिया से रहित है। फिर भी जीव एवं पुद्गल द्रव्य को गमन करने में निमित्त है। मात्र (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) पाँच ह्स्व अक्षरों के उच्चारण जितनी जिनकी स्थिति है ऐसे अयोगी चौदहवें गुणस्थान के अन्त में सिद्धशिला में जाने की गति क्रिया में भी धर्मास्तिकाय ही निमित्त है।

जिस प्रकार– गाड़ी के ब्रेक स्वयं में स्थिति क्रिया से रहित है लेकिन गमन करती गाड़ी को रोकने में निमित्त है।

उसी प्रकार– अधर्म द्रव्य स्वयं में गमन स्थिति क्रिया से रहित है लेकिन स्थित होते जीव एवं पुद्गल द्रव्य को स्थिर होने में अधर्म द्रव्य निमित्त होता है। सिद्ध दशा में जीव में अपनी स्वभाविक स्थिति क्रिया से स्थित होता है, उसमें भी अधर्म द्रव्य निमित्त रूप रहता है।

जिस प्रकार– सूर्य व चन्द्र का कभी नाश नहीं होता, उदय और अस्त होने से भी नाश नहीं होता। वो तो मात्र स्थान बदलता है।

उसी प्रकार– आत्मा का कभी नाश नहीं होता, वो मात्र शरीर तथा स्थान बदलता है।

जिस प्रकार– रसना इन्द्रिय की तीव्र लोलुपी मछली जाल में फँस जाती है और दुखी होती है।

उसी प्रकार– तीव्र लोलुपी गृहस्थ मिथ्यात्व–मोह के जाल में फँसा रहता है और संसार भ्रमण में दुखी होता है। ऐसे संसार से बचने हेतु दान नौका समान है। अतः गृहस्थ को अपनी ऋद्धि के प्रमाण में दान करना चाहिए।

जिस प्रकार– सवेरे की लालिमा के बाद जगमगाता सूर्य उदय होता है परन्तु संध्या की लालिमा के बाद अन्धकार होता है।

उसी प्रकार– सच्चे देव–गुरु–शास्त्र की भक्ति जगमगाते सूर्य समान है। कुदेव–गुरु–शास्त्र की भक्ति जीवन में अन्धकार भर देती है।

क्रमशः संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

दशलक्षण महापर्व सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : मङ्गलार्थी छात्रों एवं उपस्थित महानुभावों के साथ महावीर जिनालय में प्रात:काल संगीतमय पूजन तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन तत्पश्चात् मङ्गलार्थी छात्र अनुभव जैन मौ, ज्ञाता जैन, हर्षिल मोदी, शान्तनु जैन, शालीन जैन, अनुभव जैन करेली, संयम जैन, समकित जैन ईशागढ़ आदि द्वारा दशलक्षण के दस धर्मों पर, इसके बाद पण्डित सुधीर शास्त्री द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ के चतुर्थ अधिकार पर स्वाध्याय हुआ।

दोपहरकालीन कार्यक्रम में बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन का निक्षेप विषय पर स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

सायंकालीन सत्र में जिनेन्द्रभक्ति के बाद बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा दश धर्मों पर सारगर्भित स्वाध्याय, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि सम्पन्न हुए। सभी कार्यक्रम ऑनलाईन तथा ऑफलाईन सम्पन्न हुए।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय : दशलक्षण पर्व का आयोजन प्रो. जयन्तीलाल जैन के मार्गदर्शन में कोविड गाईडलाईन का पालन करते हुए बड़े ही हर्षोल्लासपूर्वक मनाया गया। प्रात: सत्र में दस दिवसीय दशलक्षण विधान का आयोजन किया गया। प्रतिदिन सायंकालीन सत्र में भक्तिगीत, आध्यात्मिक चर्चा, प्रो. जैन के द्वारा दशधर्मों पर स्वाध्याय एवं विभिन्न प्रकार के ज्ञानवर्धक कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

21 सितम्बर 2021 को क्षमावाणी पूजन का आयोजन किया गया और विश्वविद्यालय सभागार में क्षमावाणी पर्व पर **'नैतिक मूल्यों का प्रवर्तन'** विषय पर संगोष्ठी की गयी। जिसमें विश्वविद्यालय कुलपति प्रो. के.वी.एस.एम. कृष्णा एवं कुलसचिव ब्रिगेडियर समरवीर सिंह ने भी अपने विचार रखे।

समस्त कार्यक्रम का संचालन डॉ. सिद्धार्थ जैन ने किया। गोष्ठी के वक्ताओं में डॉ. दीपशिखा, प्रो. जैन, अभिषेक गुप्ता, छात्र ऋषभ जैन आदि ने अपने विचारों को व्यक्त किया। समस्त कार्यक्रम के आयोजन में श्रीमती लीलावती जैन, डॉ. दिनेश शर्मा, श्री गोपाल राजपूत आदि का सक्रिय सहयोग रहा। गोष्ठी के अन्त में छात्र-छात्राओं को प्रशस्ति-पत्र प्रदान किये गये।

करेली : पण्डित अशोक लुहाड़िया द्वारा दशलक्षण सम्पन्न हुए। आपका दैनिक

कार्यक्रम इस प्रकार रहा – प्रात:काल जिनेन्द्र पूजन, तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ में वर्णित सात तत्त्वों की भूल, दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र तथा सायंकालीन जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् दशलक्षण पूजन का अर्थ बतलाते हुए स्वाध्याय एवं रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम का लाभ प्राप्त हुआ।

टीकमगढ़ : पण्डित सचिन जैन, पण्डित संयम जैन, दिल्ली दशलक्षण महापर्व के अवसर पर पधारे। आपका दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार रहा – प्रात:काल जिनेन्द्र पूजन, मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ में वर्णित जीव-अजीव तत्त्व सम्बन्धी भूल, दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र तथा सायंकालीन जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् दशलक्षण धर्मों पर प्रत्येक दिन एक-एक धर्म पर स्वाध्याय एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन हुआ।

भोपाल (कोहेफिजा) : डॉ. सचिन्द्र जैन तीर्थधाम मङ्गलायतन से पधारे। कार्यक्रम इस प्रकार रहा – प्रात:काल जिनेन्द्र पूजन, मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ के विविध विषयों पर तथा सायंकालीन जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् दशलक्षण एवं ग्रन्थाधिराज समयसार पर पण्डित अनिल धवल एवं डॉ. सचिन्द्र जैन के द्वारा स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

इसी अवसर पर मङ्गलायतन के होनहार मङ्गलार्थी अगम जैन, आईपीएस, जो अभी राजभवन (राज्यपाल के पास) में पदस्थ हैं, का सम्मान और मङ्गलायतन का परिचय दिया गया। उपस्थित श्रोताओं ने तीर्थधाम मङ्गलायतन की योजनाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

गौरझामर : मङ्गलार्थी सुलभ जैन, झाँसी पधारे। कार्यक्रम इस प्रकार रहा – प्रात:काल जिनेन्द्र पूजन, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, पुरुषार्थसिद्धिउपाय और दोपहर में मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ के विविध विषयों पर तथा सायंकालीन जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् धर्म के दशलक्षण विषय पर स्वाध्याय एवं श्री शान्तिनाथ कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट, गौरझामर की पाठशाला के बच्चों के द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं नाटकों का आयोजन किया गया।

गढ़ाकोटा : पण्डित गुलाबचन्दजी, बीना पधारे। प्रात:काल जिनेन्द्र पूजन, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, तत्पश्चात् समयसार और दोपहर में विधान, सायंकालीन जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारजी के आधार से धर्म के दशलक्षण विषय पर स्वाध्याय एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

वैराग्य समाचार

बक्स्वाहा – श्री राजकुमार जैन शिक्षक का शान्तपरिणामपूर्वक देह परिवर्तन हो गया है। आप पण्डित चैतन्य शास्त्री अहमदाबाद के पिताजी थे।

सहारनपुर – श्री प्रमोदकुमार जैन का शान्तपरिणामपूर्वक देह परिवर्तन हो गया है। आप जैन युवा फैडरेशन के मंत्री श्री प्रवीणकुमार जैन के पिताजी थे, आपका पौत्र सम्यक् जैन भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अध्ययनरत है।

खण्डवा – श्री राजाभाई जैन का शान्तपरिणामपूर्वक देह परिवर्तन हो गया है। आप गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त एवं सोनगढ़ ट्रस्ट के ट्रस्टी थे।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

तृतीय पुस्तक की वाचना 09 जुलाई 2021 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम – विद्वान पण्डित जे.पी. दोशी, मुम्बई; प्रो. जयन्तीलाल जैन, मंगलायतन विश्वविद्यालय एवं सहयोगी बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होगा।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)

रात्रि 07.30 से 08.30 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

08.30 से 09.15 बजे तक **समयसार ग्रन्थाधिराज की गाथाओं का शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**

(विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर)

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198, Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

मंगलायतन विश्वविद्यालय की संगोष्ठी में सम्मिलित वक्ताओं को प्रशस्तिपत्र प्रदान किए गए।

ऐसे होते हैं हमारे जैन मुनि महाराज!

मुनिराज को वीतरागता फली-फूली है; जिस प्रकार फूल की कली खिल उठती है, उसी प्रकार वीतरागता खिल उठी है। श्रेणिक राजा ने यशोधर मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया था; करोड़ों चीटियाँ शरीर पर चढ़ गयी और जगह-जगह काटा - ऐसे उपसर्ग के समय भी मुनि खेद-खिन्न नहीं हुए थे, परन्तु अन्तर में वीतरागी आनन्द में क्रीड़ा करते थे। चेलना रानी कहने लगी— **देखो! ऐसे होते हैं हमारे जैन मुनि! अन्तर आनन्द की मस्ती में उपसर्ग के प्रति उनका लक्ष्य नहीं जाता।** अन्तर में एकदम अतीन्द्रिय आनन्द की मस्ती में उपसर्ग के प्रति उनका लक्ष्य ही नहीं जाता। अन्तर में एकदम अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति में लीन हो गये हैं। **यहाँ तो कहते हैं कि मुनिराज को प्रतिकूलता में खेद नहीं है और अनुकूलता में हर्ष नहीं है।** *(- वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ 252)*

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

दीक्षा कल्याणक का अपूर्व अवसर

जिस समय भगवान का साक्षात् दीक्षा कल्याणक होता होगा, उस समय कैसा लगता होगा? अहो! जो चक्रवर्ती थे, कामदेव थे और तीर्थङ्कर थे; उन्होंने जिस समय दीक्षा ली होगी, उस समय की दशा की क्या बात करना! छह खण्ड में जिनका उत्तम रूप था, उत्तम भोग थे, जो तीर्थङ्कर थे - ऐसे भगवान, चारित्रदशा धारण करके प्रमत्त-अप्रमत्तभाव में झूल रहे हैं। एक क्षण में महाव्रतों की या भेद की शुभवृत्ति उठती है तो दूसरे ही क्षण उसे तोड़कर पुनः आत्मानुभव में लीन हो जाते हैं।

(- महामहोत्सव प्रवचन, पृष्ठ ३५)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com